7.2 भारतीय संविधान की उद्देशिका के मूलभूत तत्त्व और संस्कृत साहित्य

डॉ0 रामहेत गौतम*

नमोऽस्तु तस्मै सुगताय येन, हितैषिणा मे करुणात्केन।
बहूनि दुःखान्यपवर्तितानि, सुखानि भूयांस्युपसंहृतातानि।।

संविधान शब्द की व्युत्पत्ति और उसका अर्थ :–

सम्+वि+धा+ल्युट् संविधानम्
सम् = साथ–साथ
वि = क्रम
धा = धारण करना, स्थापित करना

साम्येन क्रमेण धार्यते येन तद् सम्विधानम्

किसी भी देश के शासन संचालन हेतु निर्मित एवं संकलित नियमों एवं कानूनों को संविधान कहते हैं। यह सरकार की संरचना एवं संचालन को निर्धारित एवं नियमित करता है। किसी भी देश का संविधान उस देश के अतीत एवं वर्तमान को ध्यान में रखकर लिखा जाता है। प्राचीन भारत में धर्म की सर्वोच्चता थी। प्रजा हो या प्रशासक कोई भी धर्म का उल्लंघन नहीं कर सकता था। **'धर्मो रक्षति रक्षितः।'** 'शान्त्यर्थिनौ युवां सम्यग् जानीतं धर्ममुत्तमम्' जो शान्ति चाहता है वह उत्तम धर्म को जाने।

मनुस्मृति जैसे धर्मशास्त्रा प्राचीन भारत के विधान रहे हैं। ये विधान धर्मगुरुओं के द्वारा तैयार किये जाते थे। धर्मगुरुओं के पक्षपाति हो जाने पर धर्मविधान भी सर्वजनहितकारी न रहकर वर्चस्वादियों के हितैशी बन कर रह गये। परिणामस्वरूप राष्ट्रहित होने की जगह राष्ट्र का पतन हुआ। देश में न्याय, स्वतंत्राता, समानता का असन्तुलन हो जाने से विश्वबन्धुत्व की बात करने वाले देश में राष्ट्रिय बन्धुत्व भी न टिक सका। बन्धुता के अभाव में विदेशी ताकतें फूट डालो और शासन करो की दुर्नीति में सफल रहीं, परिणामस्वरूप देश गुलामी में बंधा।

---

*सहायक प्राध्यापक संस्कृत, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर म.प्र.

Scanned by CamScanner

गुलाम बनाने वाली स्वदेशी ताकतें भी जब स्वयं गुलाम बनायी जाने लगीं तब जाकर नये गुलाम पुराने गुलामों के साथ मिलकर नवीन विदेशियों के विरुद्ध आन्दोलित हुए। अगणित बलिदानों के पश्चात् 15 अगस्त 1947 को पुनः आजादी की कुछ श्वांसे मिलीं। राजनीतिक आजादी के वाद स्वदेशी संविधान की आवश्यता थी। जिसकी नींव 1924 तथा 1925 में ही पड़ चुकी थी उस समय 'भारत का भावी संविधान भारतीयों द्वारा स्वयं बनाया जाना चाहिए।' का पुरजोर समर्थन हुआ था। 22 जनवरी 1947 को भारतीय संविधान निर्माण प्रस्ताव को स्वीकार करने आरम्भ हुई यात्राा 26 नवम्बर 1949 को सम्पन्न हुई। अब **भारतीय संविधान विश्वभर के संविधानों से दुहा गया मधु है।** इस प्रक्रिया में संविधान के प्रारूप पर 15 नवम्बर 1948 से 17 अक्टूवर 1949 के दौरान खण्डवार विचार किये जाने के पश्चात् प्रस्तावना सबसे वाद में स्वीकार की गयी। जो इस प्रकार है–

भारतीय संविधान की उद्देशिका :–

हम भारत के लोग, भारत को एक **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को; सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्राता**, प्रतिष्ठा और अवसर की **समता** प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26/11/1949 ई. मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

इस उद्देशिका में संविधान के व आधारभूत मूलभूत तत्त्व, लक्ष्य और उद्देश्य समाविष्ट किये गये हैं जो राज्य व्यवस्था के लिए संविधान निर्माताओं द्वारा निर्देशित किये गये हैं। वे तत्त्व हैं–

'हम भारत के लोग' :– इस कथन से राष्ट्र की एकता सुनिश्चित की गयी है। हमारे संविधान निर्माता सदियों से व्याप्त वर्ण व्यवस्था, सांप्रदायिकता, क्षेत्रावाद आदि के दंश से पूर्ण रूप से परिचित थे। खून की तौल मिली आजादी पुनः आपसी फूट के कारण खतरे में न पड़े , प्रशासक निरंकुश न हो सकें अतः उन्होंने राष्ट्र की शक्ति को संविधान

Scanned by CamScanner

में और हमारे संविधान की शक्ति को जनता में निहित किया है। संविधान सभा ने जनता की सहभागिता, इच्छा और निर्णय से ही सघन विचार–विमर्श की प्रक्रिया से संविधान का निर्माण किया है। आपसी एकता ही राष्ट्रहितकारी है अतः वैदिक ऋषि सम्पूर्ण देशवासियों से कामना करते हैं कि–

संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथा पूर्वे, संजानाना उपासते।।
समानो मन्त्राः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रामभिमन्त्रये व, समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति।।[1]

अर्थात् आप सब आपस में मिलकर रहें; मिलकर बोलें; मिलजुलकर ही ज्ञान प्राप्त करें; परस्पर सम्पर्क में रहें; सौमनस्य बनायें; यथायोग्य दायित्व निभायें; मिलकर मंत्राणा करें; समितियों में समान अधिकार समझें; उद्देश्य में हार्दिक समानता रखें; सब एक साथ मिलकर काम करें।

सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न :– भारत एक स्वतंत्रा राष्ट्र है, इस पर किसी भी वाहरी शक्ति का किसी भी प्रकार का नियंत्राण नहीं है। यह शक्तिसम्पन्न और सर्वोच्च है।

अयममृतनिधानं नायकोऽप्यौषधीनां,
अमृममयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः।
भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः,
परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति।।[2]

दूसरे के आश्रय में रहने से सम्मान घटता है, हल्कापन आ जाता है, जैसे अमृत का भण्डार, गुणकारी औषधियों का स्वामी, अमृतमय चांदनी वाला, सौन्दर्य का स्वामी, चन्द्रमा सूर्य के आश्रित होने से सूर्य के उदित हो आने पर कान्ति हीन हो जाता है। तात्पर्य है कि दूसरों की प्रभुता बड़प्पन को हर लेती है।

समाजवादी :– भारतीय संविधान समाजवाद के आदर्श को स्वीकार करता है। आर्थिक, सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए राष्ट्र

Scanned by CamScanner

दृढ़संकल्पित है। मानव एक सामाजिक प्राणी है, जो अपनी विविध प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विविध प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना करता है। इन सामाजिक सम्बन्धों के ताने–वाने में स्वच्छता व सुदृढ़ता को कायम रखते हुए सम्पूर्ण समाज का सम्यक् व सर्वांगीण विकास ही समाजवाद का ध्येय है। जिसके लिए भारतीय संविधान दृढ़संकल्पित है। समस्त प्रकार के उत्पादन और उनका वितरण सार्वजनिक हाथों में देने की वकालात की गयी है। आय तथा प्रतिष्ठा और जीवनयापन के स्तर में विषमता का अंत ही समाजवाद का ध्येय है।

सम्राट अशोक के अभिलेखों में मानव समाज के लिए कल्याणकारी घोषणाऐं की गयी थीं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। अशोक ने कहा था कि– **परम्परायें निभाने की अपेक्षा सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय की भावना से पूर्ण आदर्श व्यवहार अपनाया जाय। समस्त प्राणियों पर दया, दीन–दुखियों व सेवकों के साथ सम्मान** जनक व्यवहार, बृद्धों की सेवा व सम्मान आदि ही धर्म के सच्चे **अनुष्ठान हैं, जिनसे इहलोक और परलोक दोनों सुधरते हैं।** दिल्ली स्थित सम्राट अशोक का पालीभाषा, ब्राह्मीलिपि में लिखित सातवां स्तम्भ लेख।

वैदिक साहित्य एवं बौद्ध साहित्य में जगह–जगह समाजहित के लिए जोर दिया गया है–

आरोग्यपरमा लाभा, निब्बानं परमं सुखं।

अट्ठंगिको च मगानं, खेमं अमतगामिनं।।[3]

अतिथि देवो भव[4]

एको भुंजति सादूनि तं पराभवतो मुखं।[5]

जो अन्य लोगों की उपेक्षा करके अकेले ही स्वादिष्ट भोजन करता है, तो वह उसकी अवनति का कारण बनता है। यही समाजवाद के बीज हैं।

पंथनिर्पेक्ष :– देश के सभी नागरिक किसी भी धर्म को अपनाने के लिए स्वतंत्रा हैं। कोई भी राज्य किसी भी धर्मविशेष के लिए पक्षपातपूर्ण कार्य अथवा हस्क्षेप नहीं करेगा। सभी धर्म के नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के शासकीय सेवाओं में अवसर प्राप्त होंगें। इस प्रकार की

Scanned by CamScanner

पंथनिर्पेक्षता सम्राट अशोक के अभिलेखों में देखने को मिलती है। अशोक के शासनकाल में सभी धर्मों के सारभूत तत्त्वों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। लोगों में साम्प्रदायिक एकता कायम रखने के लिए शाहवाज गढ़ी स्थित पालि भाषा, ब्राह्मी लिपि में लिखित 12 वां शिलालेख में अशोक ने लिखवाया है– **'कि सभी धर्मों का मूल वाणी का संयम है। जिसमें अपने धर्म की अतिशय प्रशंसा न हो और दूसरे धर्म की निन्दा न हो। समुचित अवसर पर दूसरे धर्म समुदाय वालों का भी आदर करना चाहिए। इस तरह परधर्म का आदर करने पर व्यक्ति अपने धर्म की बृद्धि तो करता ही है, साथ ही दूसरे धर्म का भी उपकार (सम्मान) करता है।'**

महाभारत में भी कहा गया है –

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मः तत्।
अविरोधत् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम।।[6]

धर्म वही है जो किसी धर्म का विरोध नहीं करता, जो धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोध करता है, वह कुधर्म है। सभी धर्मों की एकता ही कल्याण परक है।

लोकतांत्रिक :– भारत में जनता द्वारा विना किसी भेदभाव के वयस्क मताधिकार के प्रयोग द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की लोकतंत्रात्मक सरकार स्थापित है। प्रशासन की इस पद्धति में समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व होता है। आजादी से पूर्व सदियों से भारत में राजतंत्रा पद्धति से शासन होता रहा है, फिर भी प्रजातंत्रा के बीज भारतीय संस्कृति में विद्यमान थे। बौद्ध संधों में नेता का चयन इसी पद्धति से होता था।

गणराज्य :– भारत में कोई वर्ग या वंश विशेषाधिकार प्राप्त न होकर जनता ही सर्वोच्च है सभी सार्वजनिक पदो के द्वार नस्ल, जाति, पंथ, लिंग आदि के किसी भी प्रकार के भेद के विना प्रत्येक नागरिक के लिए खुले हुए हैं। कोई भी वंशानुगत शासक न होकर जनप्रतिनिधियों के निर्वाचक मंडल द्वारा केवल पांच वर्ष के लिए राष्ट्राध्यक्ष का चुनाव किया जाता है, जो राष्ट्रपति कहलाता है। राष्ट्र के अनुकूल कार्य करते हुए भी अधिकतम पाँच वर्षों तक राष्ट्रपति अपने पद पर रह सकता है। राष्ट्र के विरुद्ध आचरण होने पर जनता उसे कभी भी पदच्युत कर सकती है। जनता को प्राथमिकता देते हुए कहा गया है कि– **जिस**

Scanned by CamScanner

प्रकार पागल कुत्ते को मार दिया जाता है, उसी प्रकार अन्यायी और अत्याचारी राजा को प्रजा द्वारा मार दिया जाना चाहिए।[7]

प्राचीन भारत में अनेक क्षेत्रों में गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली थी। वैदिक काल में भी लोकतांत्रिक चिन्तन बीज रूप में विद्यमान था। महाभारत के वाद विशाल साम्राज्यों के स्थान पर छोटे– छोटे गणतंत्रा–राज्य स्थापित होने लगे थे। बौद्ध साहित्य में भी पाटलिपुत्रा के निकटवर्ती लिच्छवि राजधानी वैशाली जैसे गणराज्यों के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

न्याय :– व्यक्तियों के परस्पर हितों, समूहों, समुदायों के परस्पर हितों के बीच सामंजस्य की स्थापना ही न्याय है। उद्देशिका में न्याय को स्वतंत्राता, समानता और बन्धुत्व के सिद्धान्तों से भी ऊँचा स्थान दिया गया है।

इष्टेष्वनिष्टेषु च कार्यवत्सु न रागदोषाश्रयतां प्रपेदे।
शिवं सिषेवे व्यवहारशुद्धं यज्ञं हि मेने न तथा यथा तत्।।[8]

अर्थात् कार्य करने में, चाहे वे इष्ट किये हों या अनिष्ट किये हों, राग–द्वेश नहीं किया। राज्यशासन के व्यवहार में कल्याणकारी निर्णय किया तथा यज्ञ को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना व्यवहार(न्याय) को दिया। शुद्धोदन के जैसी न्याय प्रक्रिया ही राष्ट्र निर्माण कर सकती है। जो हमारे संविधान में अपनायी गयी।

समाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय के मामले में न्याय प्रक्रिया में सभी नागरिकों को समान समझा जाता है। हमारे संविधान निर्माता अतीत की स्मृतिकालीन न्याय प्रक्रिया के दुष्परिणों से भलीभाँति परिचित थे। अतः विधान निर्माण के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया कि ऐसी भूल पुनः न हो।

सामाजिक न्याय के अन्तर्गत भारत के सभी नागरिकों को एक समान समझा जाता है। जन्म, मूल वंश, जाति, धर्म, लिंग,उपाधि आदि के कारण समाज में उनकी प्रतिष्ठा का न्याय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अनुच्छेद 15 में सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश के मामले में विभेद या नियोग्यता का निषेध किया गया है। दलितों, पिछड़ों के सामाजिक सम्मान की अभिवृद्धि, उनके खान–पान, उनकी शिक्षा और जीवन स्तर में सुधार के साथ उन्हें आम नागरिकों के समकक्ष खड़ा करना ही सामाजिक न्याय का ध्येय है।

Scanned by CamScanner

आर्थिक न्याय के अन्तर्गत अमीर हो या गरीब सब को एक सा न्याय उपलब्ध कराये जाने पर जोर दिया गया है। अमीरी और गरीबी की खाई को पाटने के लिए नियम दिये गये हैं। अनुच्छेद 39 में व्यवस्था की गयी है कि सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध हों। स्त्री तथा पुरुष को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले।

राजनीतिक न्याय से तात्पर्य है कि जाति, वंश, सम्प्रदाय, धर्म या क्षेत्रा आदि के आधार पर विभेद किये विना सभी भारतीय नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रियाओं में समान भागीदारी हो।

स्वतंत्राता :– देश के प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, राजनीतिक विचार रखने और प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्राता है। भारत का प्रत्येक नागरिक अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म का पालन करने, विचार रखने, और अपने तरीके से उपासना करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रा है। संस्कृत साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में सभी मानव एक समान स्वतंत्रा नहीं थे। दलितों, स्त्रियों को स्वतंत्राता का अधिकार नहीं था, जो कि भारत के पतन का कारण बना। अतः हमारे विधान निर्माताओं से इस मामले में पूर्ण सावधानी रखते हुए सांवैधानिक नियम बनाये। जिसे कायम रखना हमारा दायित्व है।

समता :– सभी नागरिकों को स्वेच्छानुसार शिक्षा प्राप्त करने, योग्यतानुसार सेवाक्षेत्रा चयन करने के लिए समता के आधार पर अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी है। कानून के सामने देश के समस्त नागरिक समान होंगे। अस्पृश्यता के भेदभाव को सांवैधानिक प्रावधानों के द्वारा समाप्त किया गया है। अब किसी सम्बूक का बध नहीं होगा, किसी एकलव्य का अगूंठा नहीं काटा जायेगा, किसी कर्ण की विद्या निष्फल नहीं होगी। वेद मंत्रा श्रवण पर कानों में पिघला शीशा नहीं भरा जायेगा, मंत्रोच्चारण पर किसी की जिह्वा नहीं काटी जायेगी।

समता का सिद्धान्त भारत में 6 वी शताब्दी ई. पू. में तथागत गौतम बुद्ध के द्वारा लागू किया गया था। बुद्ध के संघ में किसी के साथ उनकी जाति या वंश के आधार पर वरीयता नहीं दी जाती थी। उस काल में अछूत माने जाने वाले उपाली नाई, सभ्य समाज में निन्दित वैशाली की नगर वधू आम्रपाली को भी बुरे कर्मों को त्यागकर

Scanned by CamScanner

सद्मार्ग अपना लेने पर संघ में वही सम्मान दिया जाता था जो राजवंशीय आनन्द आदि को दिया जाता था।

त्वत्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्त्यास्त्वं विभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।

त्वेमे पृथिवी पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।।

ता नः प्रजाः संदुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवी धेहि मह्यम्।।[9]

मा नो द्विक्षत कश्यन।[10]

समाज के पांचों वर्गों में सजातीयता का भाव भरने के उद्देश्य से कवि घोषणा करता है कि– हम सभी भारत की संतान हैं; उसी का दिया हुआ अन्न खा रहे हैं; अतः सभी उसके अपने हैं। हमें चाहिए कि हम सब संगठित हों; मधुर भाषी हों; तथा आपस में कोई द्वेष न रखें।

वेदों का सार बोलकर अपनी मनमानी थोपने वालों ने वेदों का अपमान किया है। जिसका कलंक हम आज तक ढो रहे हैं।

व्यक्ति की गरिमा :– देश के समस्त नागरिकों को अपने सम्यक् एवं सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के अवसर उपलब्ध कराये गये हैं। अशोक दीन–दुखियों, दरिद्रों और सेवकों के सम्मान करने का निदेश देते हुए कहते हैं कि–

एत तु महिडायो बहुकं च बहुविधं च छुदं च निरथं च मंगलं करोति (।) त कतव्यमेवतु मंगल (।) अफलं तु खो

एतरिंस मंगलं (।) अयं तु महाफले मंगले च धंममंगले (।) ततेत दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती गुरूनं, अपचिति साधु 5

(अर्थात समाज में अनेक प्रकार के परम्परागत धार्मिक मंगलकारी कार्य सम्पन्न किये व करवाये जाते हैं। इन कार्यो से तो कम ही पुण्य फल मिलता है। मानव धर्म मंगल ही महामंगल फल दायक होता है और वह महामंगल मानव धर्म है– दीन–दुखियों, दासों भतकों(भृत्यों) के प्रति सम्मान जनक व्यवहार, श्रेष्ठजानों का आदर सत्कार करना।) इस प्रकार के व्यवहार से हमारे देष में सामाजिक व साम्प्रदायिक सहिष्णुता और एकता सुदृढ़ होती है।

राष्ट्र की एकता और अखण्डताः– भारत एक संघराज्य है। संविधान के अनुसार कोई भी राज्य भारत संघ से अलग नहीं हो सकता। नागरिकों

Scanned by CamScanner

को भारत की इकहरी नागरिकता प्राप्त है। राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा हेतु विघटनकारी दुःशक्तियों के खात्मे हेतु संविधान पूर्णरूपेण सक्षम है। इस प्र कार की भावना वेदों में भी उपलब्ध है–

वैदिक ऋषि भारत वासियों से आशा करते हैं कि–

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।[11]

अर्थात् आप अपनी सुविधानुसार चाहे जिस भाषा में बात करें; अपनी इच्छानुसार चाहे जिस धर्म की उपासना करें; किन्तु उन्हें अपने समग्र राष्ट्र को अपने गृह के समान समझना चाहिए; उसकी मिलजुलकर देखभाल करनी चाहिए, तभी हमारा राष्ट्र ऐश्वर्य सम्पन्न होगा।

बंधुता :– भारत की एकता, अखण्डता और उसके सम्यक् सर्वांगीण विकास, समृद्धि और संरक्षण के लिए बंधुत्व अत्यावश्यक है। सभी जातियों, वर्गों, धर्मों, सम्प्रदायों, भाषाओं, क्षेत्रों आदि के बीच सद्भाव, एकता और भाईचारे के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र प्रतिबद्ध है। मन, विचार और क्रियाकलापों में मतभेद की अपेक्षा बंधुता को बनाये रखने के लिए वैदिक ऋषि नागरिकों से अपील करते हैं कि–

सं वो मनांसि, सं व्रता समाकूतीर्नमामसि।

अमी ये विव्रता स्थन, तान्वः सं नमयामसि।।[12]

'मा नो द्विक्षत कश्चन'।[13]

हम सब संगठित हों; मधुरभाषी हों तथा किसी से द्वेष भाव न रखें। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वेदों से वर्तमान तक के संस्कृत के सद्साहित्य को पूजा करने मात्रा की अपेक्षा सम्यक् अनुशीलन पूर्वक चरितार्थ करने पर आज भी उसमें राष्ट्र निर्माण की अपार क्षमता है।

शास्त्राण्यधीत्यपि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।

सुचिन्चितिं चौषधमातुराणां न नाममात्रोण करोत्यरोगम्।।[14]

Scanned by CamScanner

सन्दर्भ :

1. ऋग्वेद–10/191/2–4
2. चाणक्य नीति–15.14
3. मज्झिमनिकाय पालि।
4. तैत्तरीयोपनिषद् 1/11
5. सुत्तनिपात 1.6.12
6. महाभारत, वन पर्व–131.10
7. मनुस्मृति।
8. बु.च.2.39
9. अथर्ववेद –12/1/15–16
10. अथर्ववेद–12/1/18, 23–25
11. अथर्ववेद, 12/1/45
12. अथर्ववेद –3.8.5
13. अथर्ववेद, 12/1/18, 23–25
14. हितोपदेश मित्रालाभ–171

Scanned by CamScanner

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
प्रथम अध्याय : वेद–विषयक चिन्तन		**01–35**
1.1	संस्कृत में संशोधन की दिशाएँ **प्रो0 कमलेश कुमार छ0 चोकसी**	01–13
1.2	वाक् की वैदिक अवधारणा **प्रो0 सरोज कौशल**	14–25
1.3	ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त अर्थवाद वाक्यों की सार्थकता (पं. ओझा के वेद–विज्ञान के आलोक में) **डॉ0 दीपमाला**	26–35
द्वितीय अध्याय : पुराण एवं आर्ष काव्य विषयक चिन्तन		**36–45**
2.1	श्रीमद्भगवद्गीता की टीका परम्परा **विकास कुमार मीना**	36–41
2.2	मत्स्य पुराण में वन संरक्षण का चिन्तन **डॉ0 शिप्रा पारीक**	42–45
तृतीय अध्याय : महाकाव्य विषयक चिन्तन		**46–72**
3.1	महाकवि कालिदास का काव्य कौशल **डॉ0 सुनीता आर्य**	46–52
3.2	कालिदासीय काव्यों में नारीरूपवैविध्य **डॉ0 निहाल सिंह**	53–60
3.3	काव्यशास्त्रीयर्दिशा नैषधीयचरितमहाकाव्ये रससमीक्षा **मण्टु कुमार जाना**	61–72
चतुर्थ अध्याय : नाट्य काव्य विषयक चिन्तन		**73–147**
4.1	मालविकाग्निमित्रम् का सूक्तिवैशिष्ट्य **डॉ0 मोनिका वर्मा**	73–86
4.2	महाकवि भवभूति के महावीरचरितम् नाटक में अद्भुत रस विवेचन **डॉ0 बाबूलाल मीना**	87–97
4.3	काव्येषु नाटकस्य रमणीयता **डॉ0 आशा सिंह रावत**	98–105
4.4	'संस्कृत रूपकों में वर्णित "विट" का अध्ययन' **डॉ0 प्रदीप कुमार**	106–110
4.5	उत्तररामचरितम् में परमात्मा की अवधारणा **डॉ0 सकीना कुमारी सालवी**	111–118
4.6	भवभूतिकृत उत्तररामचरितम् में अलङ्कार योजना **वन्दना चौधरी**	119–129

Scanned by CamScanner

4.7 प्रसन्नराघव और अनर्घराघव नाटक में रीतियाँ
रमेशचन्द्र सालवी 130–139
4.8 संस्कृत साहित्य में रूपक एक अनुशीलन
किरन प्रकाश 140–147
पंचम अध्याय : काव्यशास्त्र विषयक चिन्तन **148–222**
5.1 कारणभेद से काव्यभेद एक दार्शनिक दृष्टि
डॉ0 शशिकान्त द्विवेदी 148–177
5.2 रीति की अवधारणा
डॉ0 शान्ति लाल सालवी 178–182
5.3 काव्यादर्श में प्रहेलिकाएँ
डॉ0 संजय कुमार 183–192
5.4 काव्यशास्त्र में रसतत्त्व विमर्श
डॉ0 गटु लाल पाटीदार 193–200
5.5 हास्यरस : एक विमर्श
डॉ0 स्मिता शर्मा 201–207
5.6 साहित्यशास्त्राभिमतलक्षणा–लक्षणम्, लक्षणाहेतुश्च
डॉ0 सुभद्रा कुमारी 208–214
5.7 भरत मुनि का रससूत्र
रामजीत यादव 215–222
षष्ठ अध्याय : आधुनिक संस्कृत साहित्य चिन्तन **223–244**
6.1 मत्स्यांचल का संस्कृत स्तोत्रसाहित्य
प्रो0 नीरज शर्मा 223–231
6.2 Abhijnanashakuntalam and Hamlet: A Comparative View
Dr. Rajneesh Pandey 232–244
सप्तम अध्याय : विविध विषयक चिन्तन **245–312**
7.1 अद्वैतचित्
डॉ0 सरोज कुमार पाढी 245–283
7.2 भारतीय संविधान की उद्देशिका के मूलभूत तत्त्व
डॉ0 रामहेत गौतम 284–293
7.3 'लिम्पतीव' इत्यादि तिङन्त से बोध्य क्रियारूप धर्म की उत्प्रेक्षा की उत्प्रेक्षा के स्थल में त्रिविध शाब्दबोध वैयाकरणमते
डॉ0 जगदीश प्रसाद जाटः 294–304
7.4 छन्दःसमीक्षा में निरूपित प्रस्तार–प्रत्यय विवेचन : एक अनुशीलन
ज्योत्सना यादव 305–312

Scanned by CamScanner

संस्कृत-साहित्य-साधना

सम्पादक

डॉ० शान्ति लाल सालवी

शिवालिक प्रकाशक

दिल्ली वाराणसी

Scanned by CamScanner

संस्कृत-साहित्य-साधना

प्रकाशक :
शिवालिक प्रकाशक
4648/21, ग्राउंड फ्लोर, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली–110002
फोन : 011–42351161, 9811693579
ई–मेल : shivalikprakashan@yahoo.com
शाखा कार्यालय :
प्लॉट सं0 394, संजय नगर कालोनी
पहरिया, रामदत्तपुर, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

© सम्पादक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

सम्पादक :
डॉ० शान्ति लाल सालवी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, साहित्य विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

प्रथम संस्करण : 2020

ISBN : 978-93-87195-97-4

मूल्य : ` 995.00

मुद्रक : शिवालिक प्रकाशन 27/17, शक्ति नगर, दिल्ली–110007 के लिए प्रकाशित। शब्द संयोजन : गौरव ग्राफिक्स, दिल्ली और आर. के. ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

Scanned by CamScanner